हिन्दी की कमाई खाने वाला मीडिया हिंदी का कबाड़ा करने में सबसे आगे है

हिंदी का सबसे ज़्यादा नुकसान उसे संस्कृतनिष्ठ बनाये रखने पर अड़े रहने वाले चुटियाछाप हिंदी-प्रेमियों तथा अनुवादकों ने किया है। हिंदी को पण्डिताऊ जकड़न से मुक्त करके उसे आमफ़हम तो बनाया जाना ही चाहिए, और तर्कसंगत तरीके से उसका शब्द-आधार भी बढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन उसकी शुद्धता की अनदेखी भी हरगिज़ नहीं की जानी चाहिए। कोई भी भाषा, अन्य भाषाओं के बहु-प्रचलित शब्दों को खुद में समाहित करके ही जीवन्त और सामर्थ्यवान बनी रह सकती है। अगर हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाये रखने के हिमायती लोग, हिंदी में से, अन्य भाषाओं से आये बहु-प्रचलित शब्दों को चुन-चुन कर निकाल बाहर करेंगे, तो वे उसे एक ऐसी हिंदी बना देंगे, जिसकी सम्प्रेषण-क्षमता बहुत कमज़ोर होगी।

वर्तनियों का मानकीकरण नहीं

हिंदी की एक बड़ी समस्या है, इसकी वर्तनियों के मानकीकरण की। हिंदी वालों का एक वर्ग ऐसा भी है, जो अपनी भाषा-सम्बन्धी अधकचरी जानकारी को छिपाने के लिए हिंदी को ज़्यादा से ज़्यादा सरल और आमफ़हम बनाने के नाम पर, ग़लत-सलत शब्दों को अन्धाधुन्ध थोपने पर आमादा है। जिसे खुद के तनिक भी बौध्दिक होने का गुमान होता है, या जो गद्य या पद्य की दो-चार पंक्तियां लिखनी सीख लेता है, वही मनमानी वर्तनियां गढ़नी शुरू कर देता है। ऐसा कोई भी 'ज्ञानी' अंग्रेज़ी शब्दों से छेड़छाड़ की हिमाक़त क्यों नहीं कर पाता ? हिंदी ने दूसरी भाषाओं के जिन शब्दों को बहुत अच्छी तरह से आत्मसात कर लिया है, उनके लिए नये-नये और मूल शब्द की तुलना में कहीं ज़्यादा क्लिष्ट शब्द गढ़ने की सनक क्यों ?

ऐसे लोग भूल जाते हैं कि बोली एक पगडण्डी की तरह होती है और भाषा किसी राजमार्ग की तरह। पगडण्डी पर चलने वालों को बहुत-सी 'लिबर्टी' सहज ही मिल जाती है, जबकि राजमार्ग पर तनिक-सी लापरवाही भी जानलेवा साबित हो सकती है। काव्य में तो शब्दों के मानक स्वरूप से हटने की गुंजाइश होती है, लेकिन गद्य में हरगिज़ नहीं होती। कई ऐसे शब्द हैं, जिनकी वर्तनी में, नासमझी में की गयी मामूली-सी ग़लती भी अर्थ का अनर्थ कर डालती है। जैसे, ज़लील-जलील, कार्रवाई-कार्यवाही आदि।

शब्द एक, वर्तनियां कई कई

यह कितना शर्मनाक है कि हिंदी के ऐसे सैकड़ों शब्द हैं, जिनमें से प्रत्येक के लिए अनेक वर्तनियां हैं। समझ में नहीं आता कि जब देश के सभी हिस्सों में अंग्रेज़ी शब्दों की वर्तनियां एक समान हैं, भारतीय दण्ड संहिता, दण्ड-प्रक्रिया संहिता एक समान हैं, और ट्रैफिक सिग्नल एक समान हैं, तो फिर हिंदी शब्दों की वर्तनियां एक समान क्यों नहीं हैं? हमारी मातृभाषा–'हिंदी' की बेचारगी 'ग़रीब की जोरू सबकी भाभी' जैसी क्यों है? हमें यह तथ्य कभी नहीं भूलना चाहिए कि जो क़ौमें अपनी भाषा नहीं बचा पातीं, वे एक दिन दफ़्न हो जाया करती हैं। अज्ञानतावश, अनावश्यक और ग़लत शब्द गढ़ने से भाषा विकृत होती है। शब्दों और वाक्यों के बुध्दिहीन, अनावश्यक व आडम्बरपूर्ण प्रयोगों से भाषा कमज़ोर होती है। भाषा कमज़ोर होने से प्रकारान्तर में क़ौम कमज़ोर होती है, और क़ौम के कमज़ोर होने से अन्ततः देश कमज़ोर होता है। मीडिया, ख़ासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के ज़्यादातर लोग आजकल यही कर रहे हैं।

अनुवादकों ने गढ़े अनावश्यक तथा अवैज्ञानिक शब्द

हिंदी एक अत्यन्त सम्पन्न और वैज्ञानिक भाषा है। अनुवादकों ने अपनी अज्ञानता और कूढ़मगज़ी के कारण ज़्यादातर अंग्रेज़ी शब्दों के लिए अनावश्यक तथा अवैज्ञानिक शब्द गढ़ डाले, जबकि हिंदी में पहले से ही तमाम अच्छे शब्द मौज़ूद हैं। इससे भाषा के मूल स्वरूप को चोट पहुंची और उसकी सम्प्रेषण-क्षमता कमज़ोर हुई। इसी का एक उदाहरण है—मन्त्रियों को हिंदी में दिलायी जाने वाली पद एवम् गोपनीयता की शपथ। जिस तरह, दूल्हा-दुल्हन फेरों के समय पण्डित के श्लोकों को केवल सुनते हैं, उनका अर्थ तनिक भी नहीं समझ पाते, उसी तरह मूलतः अंग्रेज़ी में लिखे गये, तथा हिंदी में अनूदित इस शपथ-पत्र की वाक्य–रचना इतनी जटिल व दुरूह है, और इसमें प्रयुक्त शब्द इतने क्लिष्ट हैं कि शपथ लेने वाले ज़्यादातर महानुभावों को यह पता नहीं होता कि वे जिन शब्दों का उच्चारण बमुश्किल कर पा रहे हैं, उनका मतलब क्या है? अगर हम उनमें से ज़्यादातर की नीयत के खोट को नज़रन्दाज कर भी दें, तो भी सवाल उठता है कि उन्हें जिन शब्दों का अर्थ ही मालूम नहीं है, उन पर वे अमल क्या करेंगे? शपथ-पत्र की वाक्य-रचना भी अंग्रेज़ी वाक्य-रचना की बेहद भद्दी नक़ल है। यानि, 'हम माखी पै माखी मारा, हमने नहिं कछु सोच विचारा'। महान सम्पादक स्व. राजेन्द्र माथुर ने हिंदी की प्रकृति के अनुरूप, शपथ-पत्र का एक प्रारूप अपने एक आलेख में प्रस्तुत किया था, जो अत्यन्त सरल और बोधगम्य था।

पद एक, पदनाम अनेक

बेहद अफ़सोस की बात है कि हिंदी के विकास के नाम पर सैकड़ों करोड़ रुपये फूँके जाने के बावज़ूद हम

आज तक सरकारी कामकाज के लिए एक ऐसी शब्दावली भी नहीं बना पाये हैं, जिसे सभी राज्यों में समान रूप से लागू कर सकें। ज़रा गौर कीजिए। कार्यपालिका में राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है – मुख्य सचिव, और केन्द्र में कैबिनेट सचिव। इसी तरह, हर ज़िले का भी एक प्रभारी अधिकारी होता है। लेकिन, उसे कहीं कलेक्टर, कहीं डिप्टी कमिश्नर, कहीं डीएम, कहीं ज़िलाधिकारी, तो कहीं ज़िला समाहर्ता कहा जाता है। कितना अफ़सोसनाक मजाक है कि एक जैसे दायित्व वाले अधिकारियों के पाँच अलग-अलग नाम हैं! जब प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री और अनेक बहुत से पदों के लिए एक-एक पदनाम हैं, तो अन्य पदों ने क्या बिगाड़ा है? सवाल है कि जब देश एक है, तो प्रशासनिक शब्दावली (विशेषत: हिंदी) में एकरूपता क्यों नहीं है? ऐसे सैकड़ों प्रशासनिक शब्द हैं, जिनमें एकरूपता नहीं है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में तो स्थिति अत्यन्त हास्यास्पद है। 'कलेक्टर' तो एक उदाहरण मात्र है।

प्रशासनिक शब्दावली में हो एकरूपता

जब हम प्रशासनिक शब्दों में एकरूपता लाने की बात करते हैं तो हमें उनके लिए पहले से ही बाकायदा स्थापित अंग्रेज़ी शब्दों को आधार मानकर काम करना चाहिए। जैसे, ज़्यादातर राज्यों में प्रशासन चलाने के लिए 'डिवीज़नल कमिशनरों' (सम्भागीय अथवा मण्डल आयुक्तों) की व्यवस्था है। और, एक मण्डल या सम्भाग में कुछ ज़िले होते हैं। इस तरह से, ज़िले के प्रभारी अधिकारी को अंग्रेज़ी में 'डिप्टी कमिशनर' और हिंदी में 'उपायुक्त' कहना ज़्यादा तार्किक है; जैसाकि दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर आदि राज्यों में है। देश की प्रशासनिक शब्दावली में फैली अराजकता एक तरह से कलंक है, और इसे ख़त्म किया जाना चाहिए।

प्रशासनिक शब्दावली के मामले में सर्वाधिक अराजकता मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में देखने को मिलेगी। इसकी एक बानगी के लिए दो–चार उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। इन प्रदेशों में 'सब इंजीनिअर' को 'उप यन्त्री', 'असिस्टेंट इंजीनिअर' को 'सहायक यन्त्री', 'एग्ज़ीक्यूटिव इंजीनिअर' को 'कार्यपालन यन्त्री' और 'सुपरिंटेंडिंग इंजीनिअर' को 'अधीक्षण यन्त्री' कहा जाता है। लेकिन जैसे ही वह 'अधीक्षण यन्त्री' तरक्की पाता है तो 'मुख्य अभियन्ता' बन जाता है। सवाल है कि 'इंजीनिअर' अचानक 'यन्त्री' से 'अभियन्ता' क्यों और कैसे बन गया? ज्ञात रहे कि 'यन्त्री' का तात्पर्य यन्त्रों अथवा औजारों से काम करने वाले व्यक्ति से है, जिसे अंग्रेज़ी में 'आर्टीसन' कहा जाता है, जबकि 'इंजीनिअर' के लिए मानक अंग्रेज़ी शब्द है – 'अभियन्ता'। 'इंजीनिअर' शब्द के लिए 'यन्त्री' शब्द का प्रयोग पूर्णत: ग़लत है।

इसी तरह, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में 'डाइरेक्टर' शब्द के लिए 'संचालक' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। 'असिस्टेंट डाइरेक्टर' के लिए 'सहायक संचालक', डिप्टी डाइरेक्टर' के लिए 'उप संचालक', 'जॉइंट डाइरेक्टर' के लिए 'संयुक्त संचालक', और 'ऐडिशनल डाइरेक्टर' के लिए 'अतिरिक्त संचालक' का प्रचलन है। लेकिन, जैसे ही कोई सज्जन 'डाइरेक्टर जनरल' बनते हैं, वह हिंदी में 'महा संचालक' की बजाय 'महा निदेशक' बन जाते हैं। सवाल है कि 'महा' जुड़ते ही 'संचालक' को 'निदेशक' क्यों कहा जाने लगा? एक ही अंग्रेज़ी शब्द के लिए दो हिंदी शब्द क्यों?

अंग्रेज़ी के 'म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन' का मानक हिंदी अनुवाद है – 'नगर निगम', लेकिन इन दोनों राज्यों में लिखा जाता है – 'नगर पालिक निगम'। यह बात समझ से परे है कि 'पालिक' शब्द की ज़रूरत क्यों और कैसे पड़ गयी? हिंदी में तो 'पालिक' नाम का कोई शब्द ही नहीं है। किसी लाल बुझक्कड़ ने कैसे गढ़ा होगा यह 'पालिक' शब्द, इसकी चर्चा फिर कभी।

इसी तरह, इन दोनों प्रदेशों में अंग्रेज़ी पदनाम 'एसडीओ' अथवा 'सब डिवीज़नल ऑफिसर' के लिए हिंदी पदनाम – 'अनुविभागीय अधिकारी' इस्तेमाल किया जाता है। सवाल फिर वही है कि जब इन दोनों प्रदेशों में 'डिवीज़न' के लिए हिंदी शब्द 'सम्भाग' और 'सब' के लिए 'उप' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है तो 'सब डिवीज़नल' के लिए 'उप सम्भागीय' लिखने-बोलने में क्या और कैसी दिक्कत है? मालूम होना चाहिए कि हिंदी में 'अनुविभागीय' नाम का कोई शब्द ही नहीं है। दोनों प्रदेशों की

प्रशासनिक शब्दावली में इसी तरह की दर्जनों विसंगतियां हैं, जिन्हें फ़ौरन दूर किये जाने की ज़रूरत है। मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में फ़ाइल 'मँगवायी' नहीं जाती, 'बुलाई' जाती है। क्या फ़ाइल कोई जीवित प्राणी है, जिसे बुलाया जाये ? इसी तरह, चोर 'पकड़े' नहीं जाते, 'पकड़ाये' जाते हैं, और किसी भी वस्तु की 'ख़रीद' नहीं होती, 'खरीदी' होती है। इन सब ग़लतियों को दुरुस्त करने के लिए मेहनत करने की ज़रूरत नहीं है ; मामूली-सा प्रयास ही काफी है।

हिंदी पर क्षेत्रीयता का असर एक सीमा तक ही सही

हिंदी पर क्षेत्रीयता का असर पड़ना स्वाभाविक है, लेकिन यह असर एक सीमा तक ही होना चाहिए। जैसे, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के निवासियों की हिंदी में वचन-दोष और लिंग-दोष बहुत ज़्यादा होते हैं। इसी कारण 'रोड', 'कोर्ट', 'सम्पादकीय' और 'ट्रक' जैसे पुल्लिंग शब्द स्त्रीलिंग बना दिये गये हैं। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग, और स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बना दिये शब्दों की संख्या सैकड़ों में है। विकट समस्या यह है कि लिंग-दोष और वचन-दोष की यह अराजक आँधी रुके तो रुके कैसे ? हरियाणा और पंजाब के लोग 'मुझे' की जगह 'मेरे को' या 'मैंने' का प्रयोग अकसर करते हैं। इन दोनों राज्यों में हिंदी का बड़े से बड़ा विद्वान भी यही कहता मिलेगा — 'मैंने ये काम नहीं करना' या 'मेरे को ये काम नहीं करना'। 'महाराष्ट्र के लोग अंग्रेज़ी के 'V' को 'व्ही' और 'I' को 'आइ' की जगह 'आय' लिखते हैं। महाराष्ट्र के 'व्ही' और 'आय' की बीमारी मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में भी फैली हुई है। इन दिनों मीडिया में ऐसे लोगों के संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, जो जाने-अनजाने में बोली को भाषा बनाने पर आमादा हैं। जिस प्रदेश में ऐसे लोगों की संख्या जितनी ज़्यादा होती है, उस प्रदेश में ग़लतियां भी उतनी ही ज़्यादा होती हैं।

दुर्दशा करने में कोई भी नहीं पीछे

कुल मिलाकर देखें, तो हिंदी की दुर्दशा करने में कोई भी पीछे नहीं है – न मीडिया, न सरकार, और न ही बड़ी ग़ैर सरकारी कम्पनियां। ये तीनों तमाम चीज़ों पर करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करते हैं, लेकिन इन्हें हिंदी की परवाह रत्ती भर भी नहीं। इनकी यह लापरवाही लेखन से जुड़े इनके रोज़मर्रा के कार्य-व्यवहार को देखकर सहज ही समझ में आ जाती है। इसका एक ताज़ातरीन उदाहरण देखिए : दसवें विश्व हिंदी सम्मलेन के अवसर पर सभी अख़बारों में प्रकाशित एक पूरे पेज के विज्ञापन में प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी और मुख्यमन्त्री शिवराज सिंह चौहान के जो सन्देश दिये गये हैं, उन्हीं में भाषा की कई ग़लतियां हैं। जाहिर है कि न तो मोदी ने, और न ही शिवराज सिंह ने अपने ये सन्देश खुद लिखे नहीं होंगे। किसी तथाकथित 'हिंदी-विद्वान्' ने ही तो लिखे होंगे न। बस, यहीं से शुरू होती है हिंदी की व्यथा–कथा।

पूरी शिद्दत से निभा रहे हिंदी से 'शत्रुता'

ज़्यादातर हिंदी मीडिया कर्मी अज्ञानता के चलते हिंदी से अपनी 'शत्रुता' पूरी शिद्दत से निभा रहे हैं। हिंदी को तबाह करने की मुहिम में एक मीडिया समूह सबसे आगे है। इस समूह का हिंदी अख़बार हिंदी की जगह हिंग्लिश को बढ़ावा देने के अपने अभियान में पूरी ताक़त से जुटाहै। यह समाचार पत्र दो अपराध एक साथ कर रहा है। पहला – मनमानी वर्तनियां थोपना, और दूसरा – हिंग्लिश का अन्धाधुन्ध उपयोग। सहज और सरल हिंदी शब्दों की जगह नितान्त अनावश्यक अंग्रेज़ी शब्दों को बोलने या देवनागरी लिपि में लिखने वाले लोग हिंदी का कितना नुक़सान कर रहे हैं, इसकी कल्पना तक नहीं है उन्हें। ऐसे लोग वे हैं, जिन्हें न हिंदी आती है, न अंग्रेज़ी। लोग हिंग्लिश का इस्तेमाल दूसरों को कमतर दिखाकर खुद को अँगरेज़ जताने के लिए ही करते हैं। हिंदी की त्रासदी यह है कि हिंदी के बूते दौलत के टापू बना रहे, हिंदी के जरिये अपना पेट पालकर शान बघार रहे और अन्य अनेक तरीकों से हिंदी के नाम पर धन्धेबाजी कर रहे, भाषाई संकर नस्ल के लोग ही छाये हुए हैं हिंदी मीडिया में। मालिक पीछे हैं न उनके नौकर। यहाँ, आशय यह कतई नहीं कि हिंदी में अंग्रेज़ी के शब्दों का इस्तेमाल बिल्कुल नहीँ होना चाहिए। निवेदन सिर्फ़ इतना है कि पूरी तरह से घुल-मिल गये शब्दों का प्रयोग ही किया जाये ;

जैसे – रेलवे स्टेशन, स्कूल, पुलिस आदि। किसी भी अखबार के बारे में भाषा के आधार पर ही कहा जाता है कि फलां अखबार हिंदी का है, कि कन्नड़ का है, कि अंग्रेज़ी का है। इसी से समझ लीजिए कि पत्रकारिता में भाषा का महत्व कितना ज़्यादा है।

भाषा के स्तर पर बेहद दरिद्र हैं हिंदी मीडिया कर्मी

हिंदी मीडिया में जो लोग आ रहे हैं, वे भाषा के स्तर पर बेहद दरिद्र हैं। उनकी भाषा का स्तर किसी अच्छे स्कूल में पढ़े आठवीं पास बच्चे के बराबर भी नहीं होता। वैसे, अन्य विषयों में भी उनके ज्ञान का स्तर लगभग यही होता है। इसे बढ़ाने की संस्थागत व्यवस्था फिलहाल कहीं नहीं है। जो नये युवक हिंदी मीडिया संस्थानों में आते हैं, उनके पास केवल डिग्री होती है, ज्ञान नहीं। जिस आपाधापी में उनकी शुरुआत होती है, उसके चलते वे कुछ भी नया और सार्थक सीख नहीं पाते। और फिर, जिस तरह, लम्बे समय एक ही जगह पड़ा पत्थर भी एक दिन 'महादेव' हो जाता है, उसी तरह ये महानुभाव भी कालान्तर में इतने 'सीनिअर' हो जाते हैं कि अपनी नेतृत्वकारी भूमिका के चलते कुछ भी सीखना उनकी 'शान' के ख़िलाफ़ हो जाता है। उल्टे, वे भाषाई अज्ञानता को बढ़ावा देने का काम और ज़्यादा बड़े पैमाने पर करने लगते हैं। किसी भी 'सीनिअर' को सम्पादक बनाये जाते समय भाषा-पक्ष तो किसी प्राथमिकता में होता ही नहीं है।

नतीजतन, ज़्यादातर हिंदी सम्पादक हिंदी के दस वाक्य भी नहीं लिख पायेंगे। हाँ, वे जुगाड़ू मैनेजरी और पीआर के काम में निष्णात अवश्य होते हैं। कोढ़ में खाज यह कि सभी नव आगन्तुक, क्राइम या पॉलिटिकल रिपोर्टर ही बनने पर उतारू होते हैं। कोई भी उप सम्पादक नहीं बनना चाहता। इसके चलते, हिंदी मीडिया संस्थानों में सम्पादन डेस्क निरन्तर कमज़ोर और हेय होते चले गये, जबकि वे इन संस्थानों की रीढ़ होते हैं। हालात इस कदर बदतर हो गये हैं कि अब तो रिपोर्टरों को ही सम्पादक बनाया जाने लगा है, क्योंकि वे 'सम्पर्क-सम्पन्न' जो होते हैं!

आखिर कब ख़त्म होगा अज्ञातवास ?

यहां, यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए सम्विधान-सभा में प्रस्तुत एक प्रस्ताव को सन 1950 में लागू किया गया था। इसमें प्रावधान था कि हिंदी 15 वर्षों में अंग्रेज़ी की जगह ले लेगी। लेकिन सम्विधान की धारा 348 में ऐसे कई हिंदी-विरोधी संशोधन होते चले गये, जिनके कारण हिंदी आज भी वनवास काटने को विवश है। सवाल है कि जब भगवान राम के वनवास, और पाण्डवों के अज्ञातवास की एक निश्चित अवधि थी, तो हिंदी का वनवास कब ख़त्म होगा आखिर ?

पहले घर में तो मिले सम्मान

जब योग को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाने के लिए 177 देशों का समर्थन आसानी से हासिल हो गया, तो हिंदी को अन्तरराष्ट्रीय भाषा का सम्मान दिलाने के लिए कारगर पहल अवश्य की जानी चाहिए। लेकिन इससे पहले, हिंदी को उसके अपने घर, यानि भारत में तो समुचित मान-सम्मान मिले! उसे राष्ट्रभाषा का सम्वैधानिक दर्जा किसी भी कीमत पर मिलना ही चाहिए।

(लेखक नव भारत, भोपाल के वरिष्ठ समूह सम्पादक हैं)

साभार- http://www.samachar4media.com/ से